

शिक्षा की चिंता करता एक कथाकार

पल्लव

हमारे यहां आम जनता को विभिन्न विषयों पर शिक्षित करने वाला सहज-सरल साहित्य न के बराबर ही मिलता है। इसके लिए जरूरी है कि आम लोगों के अनुभवों से जोड़ते हुए समस्याओं को सहज-सरल तरीके से रखा जाए। जाने-माने कथाकार प्रेमपाल शर्मा द्वारा शिक्षा पर ये पुस्तकें इसी मकसद से लिखी गई हैं। इस अंक में उनकी पुस्तक 'शिक्षा के सरोकार' एवं 'शिक्षा, भाषा और प्रशासन' की समीक्षा पेश है।

हिन्दी साहित्य में अब ऐसे लेखक बहुत कम बचे हैं जो शुद्ध साहित्य से इतर लिखना सामाजिक जिम्मेदारी मानते हों। अब साहित्य लेखन भी दरअसल एक कैरियर बनता जा रहा है, तब इतर मसलों पर लिखना खतरनाक भी हो सकता है। जैसे ही आप कविता की रेशमी दुनिया से बाहर आएंगे और अपने परिवेश की समस्याओं पर सीधे-सीधे लिखेंगे तो बहुत संभव है कि अपनी गली के गुंडे से लगाकर देश के नीति-निर्माताओं तक की नाराजगी मोल लेनी पड़े। ऐसे में हिन्दी के एक जमे जमाए कथाकार प्रेमपाल शर्मा का कहानी लेखन से विरत होकर शिक्षा जैसे जोखिम भरे मसले पर लगातार लिखना चौंकाता है। यह भारत में भूमंडलीकरण अथवा उदारीकरण के शुरुआती दिन थे जब प्रेमपाल शर्मा ने 'पिज्जा और छेदीलाल' जैसी कहानी लिखकर पाठकों और आलोचकों का ध्यान एक साथ खींचा था। वे चाहते तो पिज्जा की शृंखला में आगे बर्गर और मॉल पर भी ऐसी ही रोचक और हिट होने वाली कहानियां लिख सकते थे लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। अपने लेखन के अनुभवों से धीरे-धीरे वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि शिक्षा ही वह औजार हो सकता है जो भारत की अनेक समस्याओं के निदान में सहायक बने। अभी उनकी दो नई किताबें आई हैं और एक अर्थ में दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। पहली में उनके निबंध हैं और दूसरी में शिक्षा के संबंध में उनसे

किया गया लंबा संवाद। पहली किताब शिक्षा के सरोकार में उनके छोटे-छोटे (और कुछ बड़े भी) आलेख शिक्षा के मूलभूत सवालियों से टकराते हैं। पहला ही आलेख है- काम की शिक्षा, यह दुर्भाग्यपूर्ण किन्तु कठोर सच्चाई है कि इंजीनियरिंग पढ़ा युवा वाशिंग मशीन ठीक नहीं कर पाता, ऐसे उदाहरण प्रत्येक क्षेत्र में सहज देखे जा सकते हैं। शर्मा लिखते हैं 'काम की शिक्षा दी गई होती तो सारी हिन्दी-पट्टी समेत बंगाल, बिहार, उत्तर-प्रदेश सारे संसाधनों के बावजूद भी इतने दरिद्र न होते।' स्कूल कॉलेज की छुट्टियों में बड़े-बड़े होमवर्क दिए जाते हैं। प्रेमपाल शर्मा इस प्रसंग में गांधी जी के सुझावों को याद करते हुए लिखते हैं कि छुट्टियों में इन छात्रों को आसपास के गांवों, विकलांगों के स्कूल, अस्पताल समाचार पत्रों के कार्यालय, ईंट भट्टे या कारखानों में जाएं और अपने अध्ययन और निरीक्षण का विस्तार करें। उनका निष्कर्ष है- 'समाज के लिए उपयोगी, संवेदनशील और बेहतर नागरिक बनने का मौका ये छुट्टियां ही दे सकती हैं।' ऐसा ही एक सुन्दर आलेख है 'पत्र की शिक्षा' जिसमें वे स्कूली शिक्षा में रटत के कारण हो रहे नुकसान को पत्र लेखन से जोड़कर देखते हैं। हम जानते हैं कि एक सजग और स्वस्थ नागरिक समाज तभी बन सकता है जब वह संवाद करता हो और रचनात्मकता से भरा हो। लेखक की पीड़ा है इस बुनियादी खामी के कारण हम अपनी छोटी-छोटी समस्याओं के लिए लड़ने में भी असमर्थ हैं।

लेखक परिचय

लगभग एक दशक से हिन्दी साहित्य का अध्यापन, हिन्दी की लघु पत्रिका 'बनास जन' के संपादक। संप्रति : हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में साहित्य के प्राध्यापक हैं।

डिग्री पर ही सारा ध्यान होने से हमारे विश्वविद्यालय बदलाव के केंद्र नहीं बन पाए हैं और अपने एक आलेख 'डिग्री की प्रोजेक्ट' में वे उचित तुलना करते हैं- 'लगभग सौ वर्ष पहले यूरोप के



‘शिक्षा के सरोकार’

प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन,
एन-77, कर्नाट सर्कस, नई दिल्ली-110001

मूल्य : 110 रुपये (पेपरबैक)

विश्वविद्यालयों में जो हो रहा था क्या हमारे यहां आज भी यह संभव है?’ ये प्रेमपाल शर्मा ही हैं जो ट्यूशन पर बात करते हुए यहां तक आते हैं- ‘उदारीकरण की मार सबसे ज्यादा शिक्षा पर नजर आ रही है। सरकार आर्थिक तंगी का रोना रट-रट हाथ सिकोड़ने को मजबूर है तो गरीब देश के अमीरों को फॉरेन-ब्रांड कनाडा, अमेरिका, इंग्लैण्ड के विश्वविद्यालय लपकने के लिए तैयार। ऐसे-ऐसे विदेशी विश्वविद्यालय सामने आ रहे हैं जिन्हें उनके अपने देश में ही कौड़ियों के भाव भी कोई नहीं पूछता। यह भी इस ट्यूशन शिक्षा का अगला आयाम है। ‘शिक्षा पर बात हो और परीक्षा का जिन्न न आए, भला यह कैसे हो सकता है? शर्मा परीक्षा और उसके आतंक को व्याख्यायित करते हैं और इसे सांचाबद्ध व्यक्तित्व बनाने की कवायद के रूप में देखते हैं। शर्मा लिखते हैं- ‘शिक्षा परीक्षा की पद्धतियां जिम्मेदार नागरिक, लोकसेवक बना रही हैं या उनके व्यक्तित्व को गढ़ रही हैं- एक से एक नए बोझ, डर, आतंक से? ..मेरे लिए भी और देश के लिए भी, इससे बड़ी राष्ट्रीय शर्म क्या होगी जब इस परीक्षा के डर से हर वर्ष सैकड़ों मासूम बच्चे आत्महत्या करें।’

धर्म को नैतिकता से जोड़कर नैतिक शिक्षा पर जोर देने की बात बहुधा की जाती है। प्रेमपाल शर्मा ने एक छोटे आलेख ‘शिक्षा का धर्म’ में वे इस विषय पर बात करते हैं और इस प्रसंग में गिजुभाई बधेका के महत्त्वपूर्ण विचारों को भी साझा करते हैं। आगे एक अन्य आलेख ‘गोपनीयता के स्कूल’ में वे फिर इसी संकीर्ण मानसिकता से टकराते

हैं। यहां प्रसंग दूसरा है। आजकल विपश्यना या मेडिटेशन जैसे शिविरों में जाने और ‘ऊर्जावान’ होकर लौटने का चलन है। ऐसे किसी शिविर से लौटे अपने किसी एक मित्र से इसके बारे में जानना चाहते हैं तो उन्हें मालूम होता है कि शिविर में सबसे पहले इसी बात की शपथ दिलाई जाती है कि किसी को शिविर के बारे में नहीं बताएंगे। प्रेमपाल शर्मा लिखते हैं- ‘विचार का पिलपिलापन ऐसे किसी भी प्रश्न से डरता है क्योंकि उस दर्शन में प्रश्न करने की इजाजत ही नहीं है। ...एक बड़े फलक पर देखें तो पिछले एक हजार साल का इतिहास इसी गोपनीयता को बचाने, सुरक्षित रखने में आत्मघाती विध्वंस की हद तक जाने का इतिहास रहा है।’ बिच्छू उतारने के मंत्र का किस्सा सुनाने के बाद शर्मा धर्म और विज्ञान का बुनियादी फर्क ठीक समझ रहे हैं कि धर्म अपने को जांचने-परखने, बदले जाने से डरता है जबकि विज्ञान की बुनियाद ही बार-बार जांचना-परखना है जिसमें कोई भी सत्य अंतिम सत्य नहीं होता।

प्रेमपाल शर्मा शिक्षा से जुड़े छोटे-छोटे सवालों को धीरे-धीरे व्यापक परिप्रेक्ष्य में ले जाते हैं और जब वे शिक्षा के मूल्यों की बात करते हैं तब उनका सवाल होता है- वे राष्ट्रप्रेम, देश-भक्ति से आखिर चाहते क्या हैं? पड़ोसी देश पर पत्थर फेंकना, पैटन टैंकों से हमला? या अपने ही किसी पड़ोसी का सर कलम करना। ...क्या देश-प्रेम का मतलब पाकिस्तान या अमेरिका को गाली देना ही है या पुल के निर्माण में नकली लोहा, सीमेंट लगाना भी देश प्रेम की परिधि का हिस्सा है? हो सकता है आजादी के वक्त ऐसे देशप्रेम वगैरह जैसे अस्थाई मूल्यों की कोई जगह बन गई हो, लेकिन अब तो आजादी के साठ बरस हो गए। किसको हुंकार, ललकारते रहेंगे और क्यों? क्या अपने समाज के सभी तबकों के साथ मिल-बैठकर खाना, पढ़ना, रहना देशप्रेम नहीं है।’ कहना न होगा कि शिक्षा के अनेक देशी पैरोकार राष्ट्रप्रेम को बड़ा मूल्य मानकर इसे शिक्षा में जोड़ना चाहते हैं। उनके लिए वन्दे मातरम गाने और सरस्वती पूजा से आने वाली नैतिकता से बड़ा राष्ट्रप्रेम कुछ नहीं। सही है कि प्रेमपाल ऐसे नैतिक मूल्यों को दीवार पर लटके मूल्य की संज्ञा देते हैं।

अपने आलेखों में बार-बार प्रेमपाल शर्मा उस शिक्षा की जरूरत पर बल देते हैं जो समान हो, सार्थक हो और भेदभाव मिटाने वाली हो। अकारण नहीं कि उन्हें इसके लिए महंगे अंग्रेजी स्कूल गैर-जरूरी लगते हैं बल्कि वे इन्हें ‘असमानता के द्वीप’ कहते हैं। उनमें सरकारी स्कूलों में अभी भी खुशबू खोजने का साहस है और इसके लिए वे कोई भी उद्यम करने को प्रस्तुत हैं। एक बड़े आलेख में वे इस जिरह से गुजरते हुए कहते हैं कि ‘अलग-अलग शिक्षा के सांचे-खांचे अलग-अलग व्यक्तित्व ही पैदा करेंगे। इनकी दृष्टि अलग होगी, समझने का नजरिया अलग होगा। एक बहुलतावादी

देश में यह एक जनतांत्रिक मूल्य हो सकता है लेकिन समाज को समझने, उसे बेहतर बनाने की दृष्टियों में जब अंतर इतना विपरीत हो तो वह समाज को आगे जाने के बजाय पीछे ज्यादा ले जाता है। क्या हजारों की फीस देकर एक वातानुकूलित स्कूल में पढ़े छात्र का नजरिया सरकारी स्कूल में पढ़े, उस छात्र से मेल खा सकता है जो इससे कहीं कम सुविधाओं में पढ़कर आया हो?’ इसी तरह शिक्षा को व्यापार में बदलते जाना भी कम त्रासद नहीं है। किताब में बार-बार प्रेमपाल शर्मा इसे रेखांकित करते हैं। किताब के प्रारम्भ में एक आलेख में वे अपने दूध वाले की बात सुनाते हैं जो दूध का धंधा बंद कर अंग्रेजी स्कूल खोलने की तैयारी कर रहा है। तो कहीं प्रोजेक्ट के बहाने स्कूल वालों के नए-नए धंधों की उन्होंने खबर ली है। आगे दाखिले की नीति के बहाने फिर वे याद दिलाते हैं- ‘दिल्ली के दो हजार निजी स्कूलों के मालिक ज्यादातर पक्ष-विपक्ष की राजनीतिक पार्टियों से संबंधित हैं और शिक्षा उनके लिए न कोई मिशन का मामला है, न कोई और उद्देश्य। वे नितान्त एक धंधे की तरह शिक्षा से जुड़े हुए हैं। स्वायत्तता के नाम पर ही तो वे मनमर्जी फीस और दूसरी अनियमितताएं करते हैं। सत्ता के लिए जब शिक्षा ही एक वोट बैंक की तरह इस्तेमाल होने लगेगी तो ऐसे में सरकार कोई भी हो वह गांगुली समिति की सिफारिश से मुंह चुराएगी ही।’

प्रेमपाल शर्मा विज्ञान के बड़े पैरोकार हैं क्योंकि वे मानते हैं कि अंध विश्वासों, कुरीतियों और भ्रष्टाचार से पीड़ित इस महादेश में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बिना वास्तविक प्रगति नहीं हो सकती। इस किताब में वे विज्ञान की शिक्षा और डार्विन पर स्वतंत्र आलेख इसीलिए लिखते हैं और यही नहीं वे विज्ञान को शिक्षा की पहली शर्त बताने में कोई संकोच नहीं करते।

पुस्तक में प्रेमपाल शर्मा ने कुछ संस्मरण जैसे आलेख भी दिए हैं, ‘माँ और मेरी शिक्षा’ तथा ‘मेरे जीवन में पुस्तकालय’ को पढ़ना सुकून भरा है। ऐसे आलेखों में उनके कथाकार की सहज और प्रवाहमयी भाषा इतनी सजीव लगती है कि पाठक एक सांस में इन्हें पढ़ जाता है। असल में जिन चिंताओं के चलते प्रेमपाल शर्मा जैसे कथाकार इस तरह के विषयों पर लिखने के लिए प्रतिबद्ध दिखाई दे रहे हैं वह असल में लोकशिक्षण का ही विकसित ढंग है। शिक्षा को डिग्री से कहीं अधिक बनाने और समझने की निष्कपट आकांक्षा इस किताब को उपयोगी बनाती है।

‘शिक्षा, भाषा और प्रशासन’ शीर्षक से उनकी दूसरी किताब असल में इस किताब की पूरक है। 88 पृष्ठों की इस छोटी पुस्तक में अनुराग से उनकी लम्बी बातचीत है जिसमें पहली किताब से जुड़े विषय तथा प्रसंग बार-बार आए हैं। यहां वे हिन्दी माध्यम से पढ़ाई, रोजगार और देशी भाषाओं के मसले पर बहुत गंभीर बातें कहते हैं तो कोठारी आयोग के पक्ष में भी लम्बी जिरह करना उन्हें जरूरी लगता है। इस बातचीत में संस्मरण और प्रसंग हैं तो प्रेमपाल शर्मा अपनी पढ़ी नई-पुरानी किताबों को भी बार-बार उद्धृत करते हैं। शिक्षा की उनकी सरल-सी परिभाषा तो देखिए- बेहतर नागरिक बनाना। खुलासा यह है- ‘महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि बच्चों के पास बड़ी-बड़ी डिग्रियां हों, वे पीएचडी, इंजीनियर, डॉक्टर हों। महत्त्वपूर्ण यह है कि वे कैसे ईमानदारी चलाते या चलने देते हैं।’ इस किताब का उद्देश्य शायद यही रहा हो कि सीधी सरल बातचीत करते हुए शिक्षा नाम के विचार के प्रति लोगों को जागरूक बनाया जाए।

इन दोनों किताबों को तथाकथित मुख्यधारा के प्रकाशकों ने नहीं छापा है और जिस सादे किन्तु प्रभावशाली ढंग से इनका प्रकाशन हुआ है वह हिन्दी के लिए सुखद है।

एक लेखक गहरी सामाजिक चिंताओं और निष्ठाओं के कारण ऐसा कर सकता है कि वह मामूली दिखाई दे रहे मसलों पर अखबारों में निरंतर लिखे, सस्ती किताबें तैयार करने में सहयोग दे और अपने बूते कोई गंभीर बहस चलाने की ईमानदार चेष्टा करे। प्रेमपाल शर्मा ऐसा कर पाते हैं तो क्या यह कोई कम बात है? ♦



‘शिक्षा, भाषा और प्रशासन’
प्रकाशक : लेखक मंच प्रकाशन,
 33, नीतिखण्ड-3, इंदिरापुरम,
 गाजियाबाद-201014 उत्तर प्रदेश
मूल्य : 50 रुपये (पेपरबैक)